Research Reinforcement | A Peer Reviewed International Refereed Journal | ISSN 2348-3857
Vol. 9, Issue 2 | November 2021 - April 2022 | pp. 110-114

भारतीय इतिहास लेखन में साम्प्रदायिकता

नीलू सोनी

सहायक आचार्य, इतिहास
राजकीय महाविद्यालय हिण्डोली, बून्दी (राजस्थान)

शोध सारांश

वर्तमान संदर्भ में साम्प्रदायिकता का मुद्दा न केवल भारत में अपितु विश्व स्तर पर भी चिन्ता का विषय बना हुआ है। साम्प्रदायिकता वह संकीर्ण मनोवृति है जो या तो धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर पूरे समाज व राष्ट्र के व्यापक हितों के विरुद्ध केवल अपने व्यक्ति को ही संरक्षण देती है या अपने व्यक्ति के राजनीतिक, साम्प्रदायिक और सामाजिक, आर्थिक उत्थान का पक्ष उजागर करती है। भारतीय इतिहास में साम्प्रदायिकवाद के सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही पक्ष विद्यमान होते हैं। आज भी ज्यादातर साम्प्रदायिकवाद समस्या के तौर पर ही देखा जाता है। इस लेख द्वारा इतिहास के साम्प्रदायिक चुनाव मण्डलों, धार्मिक सुधार आन्दोलनों, सरकारी सेवाओं, भारत के विभाजन और भारतीय संस्थाओं में साम्प्रदायिकवाद ने जो हस्तक्षेप किया है व इसे जिस प्रकार बढ़ावा दिया गया है, उनके बारे में विश्लेषण करने का ही प्रयास किया गया है।

संकेताक्षर— *सामाजिक असमानता, अलगाववाद, द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त, अंग्रेजी साम्राज्यवाद*

प्रस्तावना

भारत में जब भी साम्प्रदायिकता का प्रश्न उठता है तो लेखकों या इतिहासकारों की कलम हिन्दू-मुस्लिम मतभेदों पर पहले उठती है जबकि प्राचीन व मध्यकाल से लेकर आधुनिक युग तक इतिहास में साम्प्रदायिकता की स्थिति अलग-अलग रही है। मौर्य काल में भी अशोक के शिलालेखों में धार्मिकता, सहिष्णुता के बारे में जानकारी मिलती है जिसमें उसकी धम्म नीति की चर्चा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। निश्चित तौर पर प्राचीन काल में समाज विभिन्न वर्गों व धर्मों में विभक्त था परन्तु साम्प्रदायिकता के आधार पर हुई हिंसा के बारे में जानकारी नहीं मिलती है। मध्यकाल में भी अकबर द्वारा दीन-ए-इलाही की स्थापना भी सभी धर्मों के व्यक्तियों को समान भाव से देखने से ही सम्बन्धित थी। हालांकि औरंगजेब द्वारा कुछ ऐसे कार्य किए गये जिन्हें धार्मिक व राजनैतिक दृष्टि से असहिष्णु कहा जा सकता है। जैसे—मन्दिरों को तोड़ना, जबरन धर्मान्तरण, सिख गुरु की हत्या। वर्तमान साम्प्रदायिकता की जड़ें अंग्रेजों के आगमन के साथ ही भारतीय समाज में स्थापित हुई। यह उपनिवेशवाद का प्रभाव तथा इसके खिलाफ उत्पन्न संघर्ष की आवश्यकता का प्रतिफल भी थी। हालांकि 1857 के विद्रोह के समय भी अनेक जातियाँ एकजुट होकर सामने आयी। अंग्रेजों द्वारा 'फूट डालो राज करो' की नीति के माध्यम से उन्होंने भारत में अपने हितों की पूर्ति की। इसके लिए अंग्रेजों द्वारा समय-समय पर 'साम्प्रदायिक कार्ड' का प्रयोग किया गया। जैसे—1905 में बंगाल विभाजन, 1909 का मार्ले-मिन्टो सुधार, 1932 का कम्यूनल अवार्ड, 1940 का लाहौर अधिवेशन आदि। अंग्रेजों के साम्प्रदायिकता की अन्तिम परिणति 1947 में भारत के विभाजन के रूप में दी इसके आधार पर अनेक सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक कारण मुख्य रूप से उत्तरदायी थे। साम्प्रदायिकता का आधार का क्रम यहीं नहीं रुका बल्कि आजादी के बाद भी आज तक भारतीय समाज, संस्थाओं और कूटनीतियों में उपस्थित है।

नवीन वीर गाथाएँ और साम्प्रदायिकता

प्राचीन भारत के इतिहास को हिन्दूकाल, मध्यकालीन इतिहास को मुस्लिम काल की संज्ञा दी अर्थात धर्म से ही काल का मार्गदर्शन किया गया। यह सत्य है कि राजा व प्रजा दोनों ने धार्मिक नारों का अपने आर्थिक और राजनैतिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया परन्तु यह इतिहास नहीं विडम्बना है। यदि हम कहें कि सभी मुसलमान शासक थे और सभी हिन्दू शासित। जो भी हो इतिहास के प्रति इस साम्प्रदायिक दृष्टिकोण ने 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरणों व 20वीं शताब्दी के इतिहास में सामाजिक असमानता को जन्म दिया। कुछ जातियों के पुनरुत्थान आन्दोलनों के कुछ परस्पर विरोधी रूप भी थे तथा कुछ अप्रत्यक्ष प्रवृतियाँ भी उत्पन्न हो गई। उदाहरणस्वरूप वहाबियों का गैर मुस्लिम लोगों के प्रति जिहाद (धर्म युद्ध) का नारा लगाना हिन्दुओं के लिए स्वीकार करना उतना ही कठिन था, जितना कि कुछ हिन्दू सुधारकों द्वारा देश को 'आर्यवृत' में परिणत करना मुस्लिमों के लिए। इसी प्रकार उग्र राष्ट्रवादियों ने जन साधारण को आकर्षित करने के लिए ऐसी भाषा, उपमा, लक्षणों का प्रयोग किया जिससे बड़ा जन समूह भ्रमित हो जाए। एक अलग पहलू यह भी है कि व्यापार व उद्योग में पर्याप्त अवसर न मिलने के कारण केवल सरकारी सेवाएँ ही जीवन यापन का अच्छा अवसर प्रदान करती है परन्तु शासक वर्ग ने भी इसका प्रयोग आपसी द्वेष और ईर्ष्या को उत्तेजित करने के लिए किया, कुछ राष्ट्र नेता इसे भलीभाँति समझते थे शायद आज भी परन्तु वे इसमें कुछ भी नहीं कर सकते जैसा कि एक बार पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि ''अंग्रेजों द्वारा विशाल संरक्षण का प्रयोग आपस में प्रतिद्वंद्विता और विरोध बढ़ाने के लिए किया गया, इससे आत्मसम्मान को हानि पहुँची, द्वेष बढ़ा और सरकार एक समूह को दूसरे के विरुद्ध भड़काती रही।''

भारतीय इतिहास की साम्प्रदायिक राजनीति

भारतीय इतिहास लेखन में कुछ व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों का समावेश रहा है, इसलिए यह मुद्दा शुरू से ही अत्यन्त विवादास्पद भी रहा है। 'राजतंरगिनी' में इस बात का हवाला है कि योग्य व सराहनीय इतिहासकार वही है जो अतीतकालीन घटनाओं का वर्णन न्यायाधीश के समान आवेश, पूर्वग्रह व पक्षपात मुक्त होकर करें। इतिहास में साम्प्रदायिक राजनीति कभी हिन्दू सभ्यता, कभी मुस्लिम सभ्यता, कभी क्रिश्चियन सभ्यता कहकर अभिव्यक्त की गई परन्तु भारतीय इतिहास को नस्ल व सम्प्रदाय के रंग में रंगकर भी यह बात समझ में आती है। ऐतिहासिक स्रोत अगर किसी शासक को महान, उदार या सर्वश्रेष्ठ बताते हैं तो ऐसे बयानों से लगता है कि उसके काल में अमीर व गरीब का कोई भेदभाव नहीं रहा होगा, नहीं जातीय द्वेषता व न ही आपसी विद्रोह। वास्तविकता यह है कि उस शासक विशेष के काल में निर्णय सर्वसम्मति से लिए जाते होंगे व साम्प्रदायिक विचारधारा का उतना अस्तित्व न हो जितना अन्य शासकों के काल में। भारतीय परिप्रेक्ष्य में साम्प्रदायिकता पर दृष्टिपात करे तो राजनीति के उद्भव का ही परिणाम दिखती है। समय-समय पर बने पृथक निर्वाचन मंडलों ने जातीय एकता को कमजोर करने व टकराव की स्थिति उत्पन्न करने में अहम योगदान दिया। जैसे—शिमला प्रतिनिधि मण्डल (1906), मुस्लिम लीग की स्थापना (1906), हिन्दू महासभा (1911), ईसाई धर्म प्रचारक मिशन जो अनेक समय पर भारत में आये। इनके अलावा शुद्धि और संगठन आन्दोलन व आर्य समाज के नाम पर उग्रवाद को बढ़ावा देने वाले व्यक्ति। अगस्त प्रस्ताव (1940), क्रिप्स मिशन (1942) व वेवेल योजना (1945) के बाद भारत में साम्प्रदायिक अड़चनें गहरा गई। मुस्लिम लीग मन्त्रिमण्डल शिष्टमण्डल की ओर से अपनी स्वीकृति वापस ले ली और 16 अगस्त 1946 को 'सीधी कार्यवाही दिवस' मनाया जिसमे अनेक साम्प्रदायिक दंगे हुए तथा बंगाल, यू.पी., बम्बई, पंजाब, सिंध व उतर-पश्चिमी सीमा प्रान्त में इन दंगों को भड़काया गया और अनेक प्रयासों के बावजूद भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम अंग्रेजी संसद ने जुलाई 1947 में पारित किया जिसके अनुसार 15 अगस्त 1947 को भारत को दो स्वतंत्र प्रदेशों (द्वि-राष्ट्र) भारत और पाकिस्तान में बाँट दिया गया। कई लेखकों में कई मतभेद है कि ''क्या भारत का विभाजन अनिवार्य था।'' कारण कुछ भी रहे हो परन्तु देश का विभाजन 'महान दुर्घटना' थी। यह साम्प्रदायिकता व पार्थक्य के आदर्श का स्वाभाविक अन्तिम चरण थी। वर्तमान में भी कुछ असामाजिक तत्व इसे ओर बढ़ावा देते है जो राष्ट्रवाद के लिए एक चुनौती है।

साम्प्रदायिकता का मानव जीवन पर प्रभाव

साम्प्रदायवाद असहिष्णुता पर आधारित अवधारणा है। सामान्य रूप से असहिष्णुता अन्य जाति, धर्म, परम्परा, संस्कृति से

जुड़े व्यक्ति के विश्वासों, व्यवहार व प्रथा को मानने की अनिच्छा है। यह दूसरे समाज या व्यक्ति के प्रति दुष्प्रचार करता है। साम्प्रदायवाद यदि किसी प्रदेश या देश में अपने पैर फैला ले तो इसका सीधा-सीधा प्रभाव उस देश संस्कृति में रहने वाले मानव पर पढ़ता है। साम्प्रदायिकता अंधविश्वास पर आधारित है। कभी-कभी इसका दुष्प्रभाव हिंसा या अतिवादी तरीकों के रूप में भी सामने आता है। ऐतिहासिक रूप से यह देखने में आया कि यह मानव मन को संकीर्ण कर देता है। विभिन्न सम्प्रदायवादी मान्यताएँ एक दूसरे से भिन्न होती है जो परस्पर दूरी का कारण भी बनती है। छुआछूत व ऊँच नीच की भावना साम्प्रदायवाद को फैलाती है। जैसा कि उल्लेखनीय है कि भारत के विविध दल चुनाव के समय भी साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन देते हैं, लोगों के बीच संकीर्ण भावना को बढ़ाकर व लोगों को भड़काकर स्वयं को सच्चा राष्ट्रवादी सिद्ध करते हैं। सरकार व प्रशासन की उदासीनता के कारण भी कभी-कभी साम्प्रदायिक दंगे हो जाते हैं। ऐसी भावना देश में जनता को मूल स्वरूप से अलग कर देती है। इतिहास गवाह है साम्प्रदायिकता से राष्ट्रीय एकता बाधित होती है। जनता का समूह में बटवारा हो जाता है। पारस्परिक सहयोग की भावना विकसित करने व जनजीवन के विकास में शांति भंग करने वाले अमानुषिक तत्व व असामाजिक भावना को फैलाने वाली जनता या कुप्रथाओं को समाप्त करना होगा। यह बात अलग है कि साम्प्रदायिकता जैसा तत्व समाज या देश से एक बार में समाप्त नहीं किया जा सकता इसके लिए भी कठिन प्रयास ही करने होंगे। उच्चाधिकारी से लेकर राजनेताओं को नैतिक कार्यवाहियों को आधार बनाकर भ्रष्टाचार को व साम्प्रदायवाद को समाप्त करना होगा तथा मानव को उचित व अनुचित का अन्तर समझना होगा।

धर्म एवं साम्प्रदायिकता : एक विश्लेषण परक अध्ययन

धर्म एवं साम्प्रदायिकता को न केवल इतिहास में बल्कि भारतीय राजनीति के महत्त्वपूर्ण निर्धारक तत्वों में भी शामिल किया जाता है। धर्म को समाज में शक्ति एवं प्रभाव अर्जित करने वाले माध्यम के रूप में चिह्नित किया गया है। यदि धर्म का एक पहलू देखा जाये तो यह मानव जीवन का मर्मत्व है और साम्प्रदायिकता का धर्म से विशेष जुड़ाव है। धर्म का दूसरा पहलू राजनीति से परस्पर सम्बन्धित है व जहाँ राजनीति का प्रश्न उठता है वहाँ साम्प्रदायिकता का गत्यात्मक स्वरूप सामने आता है। मजूमदार, डी.एन. तथा टी.एन. मदान ने अपनी पुस्तक ''एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल एन्थ्रोपोलोजी'' में कहा है कि धर्म व साम्प्रदायिकता किसी पारलौकिक अतिमानुष और अतीन्द्रिय शक्ति के भय का मानवीय प्रत्युत्तर है। किंग्सले डेविस का मानना है कि ''साम्प्रदायिकता इतना सर्वव्यापी व दृढ़ हो चुका है कि इसे स्पष्ट रूप से समझे बिना समाज को समझना मुश्किल हो गया है।'' भारतीय परिप्रेक्ष्य में साम्प्रदायवाद को व्यवहार का अप्रसंग तत्व ही समझना बेहतर होगा। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि ''धर्म एक प्रासंगिक तथ्य है यदि इसका सभी दलों के साथ सम्बन्ध से जुड़ाव होता है तो साम्प्रदायिकता के तत्वों की मौजूदगी कुछ न कुछ अंश में निश्चित रूप में होती है।'' मतदाताओं को वोट अपनी पार्टी के पक्ष में करने के लिए धार्मिक मठाधीशों अर्थात धर्माचार्यों, इमामों, पादरियों के साथ तालमेल में बाधाएँ उत्पन्न हो। साम्प्रदायिकता को मानवता के लिए अभिशाप ही माना गया है। भारत जैसे विशाल लोकतांत्रिक व्यवस्था में जहाँ अनेक धर्मों को मानने वाले तथा अनेकानेक जातियों के लोगों का निवास है वहाँ साम्प्रदायिकता एक गम्भीर राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक समस्या है। इतिहास में यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि धर्म को साम्प्रदायवाद से अलग नहीं किया जा सकता है।

इतिहास में साम्प्रदायिकता को बढ़ाने वाले तथ्य

इतिहास में कुछ तथ्य ऐसे रहे है जो जाने अनजाने में भाषा, लक्षणों के प्रयोग द्वारा साम्प्रदायिकवाद को प्रकट करते है जैसे कि एक आदर्श राज्य के लिए महात्मा गांधी ''रामराज्य'' की कल्पना करते थे जिसको अन्य साम्प्रदाय की जनता पसन्द नहीं करती थी। यह सत्य है कि इन शब्दों का प्रयोग जन साधारण को उभारने के लिए किया गया था परन्तु अंग्रेजों ने इसका प्रयोग साम्प्रदायिकता को उभारने के किया। और एक समय भारतीय इतिहास में ऐसा भी आया जब मुस्लिम लीग के नेतृत्व में भारतीय मुसलमानों ने तिरंगे के सामने झुकने पर भी आपत्ति व्यक्त की तथा इसी प्रकार 'सर्व इस्लाम' की भावना से प्रेरित होकर इकबाल ने 1930 के अखिल मुस्लिम लीग के इलाहाबाद अधिवेशन में यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया कि भारत के साम्प्रदायिक प्रश्न का स्थायी हल पृथक देश बनाकर ही होगा चाहे वह ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर हो अथवा बाहर। एक उप भारतीय मुस्लिम

राज्य का गठन भारत में हो, जो मुसलमानों का अन्तिम लक्ष्य प्रतीत होता है और कैम्ब्रिज के एक अनुस्नातक विद्यार्थी रहमत अली के मन में सुझाव आया कि इस पृथक प्रदेश का नाम पाकिस्तान रखा जाए। बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, विपिनचन्द्र पाल भी हिन्दूवादी विचारधारा की ओर अग्रसर रहे थे परन्तु इन्होंने कभी भारत के बंटवारे या साम्प्रदायिकता की शर्त नहीं रखी। अंग्रेजी विचारधारा के लोग भी बीज बो रहे थे। यदि आधुनिक काल के इतिहास अलावा प्राचीन इतिहास की और भी रूख किया जाये तो ऐसे अनेक तथ्य मिलते है जिन्होंने साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया जैसे—समुद्रगुप्त भारत को आर्यावर्त में परिणत करना और मध्यकाल में बाबर का जिहाद (धर्मयुद्ध) का नारा लगाना। इसके विपरीत दृष्टिकोण यह भी दर्शाता है कि साम्प्रदायवाद की जड़ें कितनी भी गहरी हो, भारतीय विशेषताओं में एक विशेषता शुरू से ही विद्यमान थी 'अनेकता में एकता'। भारत के भौगोलिक प्रदेश एक दूसरे से लगे हुए प्रदेश है, भारतीय इतिहास में हमारे देश का स्वर्णकाल रहा है, भारत विश्वगुरु भी रहा है। वर्तमान में भी भारतीय संस्कृति पर साम्प्रदायिकता का ज्यादा प्रभाव नहीं हुआ है। साम्प्रदायिकता का अधिकांश प्रयोग चाहे जो भी हो राजनीति में ही किया जाता है। पूर्व में भी भारत का इतिहास स्वर्णिम था और वर्तमान में भी भारत साम्प्रदायिकता की आलोचना करते हुए अपने अग्रिम सुनहरे पद पर अग्रसर है।

सम्प्रदायों की नीति में परिवर्तन

सर जॉन स्ट्रेची ने कहा था कि ''भारत में भिन्न धर्मों का एक साथ होना हमारी राजनैतिक स्थिति के लिए अच्छी बात है। अधिकांश राजनैतिक अधिकारों का सीधा सम्बन्ध सम्प्रदाय व जातियों से रहा है, परन्तु ज्यों-ज्यों लोगों में राजनैतिक जागृति आयी है उसके परिणाम स्वरूप इतिहास में साम्प्रदायवाद की भावना कुछ हद तक कम हुई है। एक संयुक्त भारतीय राष्ट्र की कल्पना को साकार करने के लिए साम्प्रदायिकता को कम करना आवश्यक है। यदि अंग्रेजी नीति ने मुसलमानों में जागृति का कार्य किया तो सर सैयद अहमद खान ने भी राष्ट्रवाद को साम्प्रदायिकता की तरफ धकेला। यह उल्लेखनीय है कि सैयद अहमद खां आरम्भिक काल में हिन्दू-मुस्लिम एकता के कट्टर समर्थक थे परन्तु कालान्तर में वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कट्टर विरोधी व अंग्रेजी साम्राज्य के समर्थक बन गये। यह सैयद अहमद खां ही थे जिन्होंने हिन्दू-मुसलमानों को एक सुन्दर वधू की दो आँखें बतलाई परन्तु 16 मार्च 1888 के मेरठ में दिये गये भाषण में उन्होने कहा कि हिन्दू-मुस्लिम न केवल दो राष्ट्र है अपितु विरोधी राष्ट्र है। ऐंग्लो-इण्डियन प्रशासकों ने लोगों के भय का लाभ उठाकर न केवल हिन्दू-मुसलमानों में अपितु अन्य सम्प्रदायों के बीच एक खाई बना दी। इतिहास में साम्प्रदायिकता के ऐसे अनेक उदाहरण है जिन्होंने अखण्ड भारत को विभाजित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। प्रचीन भारत में भी धर्म से काल का निर्धारण किया गया। यह सत्य है कि राजा एवं प्रजा दोनों ने ही धार्मिक नारों का अपने आर्थिक और राजनैतिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया। जो भी कारण रहे हो इतिहास के प्रति साम्प्रदायिक दृष्टिकोण ने 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरणों में तथा 20वीं शताब्दी के प्रथम अर्ध में भारतीय राजनीति में भी प्रमुख भूमिका निभाई। साम्प्रदायिकता में सुधार केवल रुढिवादी और विवेक रहित तत्वों से बचने के लिए आरम्भ किये गये थे।

क्या साम्प्रदायिकता का निवारण सम्भव है

ऐतिहासिक तौर पर प्रभुत्व व परिस्थितियों या अधिकार संगठन की बात आती है तो वर्तमान भी ज्वलन्त हो उठता है। साम्प्रदायिकता मानव मन की सनसनीखेज है जिससे सिर्फ धीरे-धीरे ही बाहर निकला जा सकता है अगर अफवाहों को समाचार के रूप में प्रसारित करना बन्द कर दे। सोशल मीडिया को किसी हिस्से में तनाव नहीं फैलाने से सम्बन्धित सशक्त माध्यम बनाए तो हो सकता इसके कुछ आशावादी परिणाम निकले। मनोवैज्ञानिक भय, नफरत, क्रोध भी आपसी समुदायों के बीच विश्वास में कमी करता है, जिससे अन्य सदस्यों का उत्पीड़न तो होता ही है साथ में शंका का भाव भी एक-दूसरे व्यक्ति पर होता है। साम्प्रदायिकता से सम्बन्धित कुछ घटनाएँ जैसे 1947 का भारत विभाजन, 1984 सिख विराधी दंगे, 1989 में घाटी से कश्मीरी पंडितों का निष्कासन, 2002 में गुजरात दंगे, 2013 में मुजफ्फपुर के दंगों से देश को अत्यधिक हानि हुई है। वर्तमान में हमें आपराधिक न्याय प्रणाली में सुधार करने के साथ-साथ पीड़ितों को पर्याप्त मुआवजा दिये जाने की आवश्यकता है। शांति, अहिंसा, करुणा, धर्मनिरपेक्षता, मानवतावादी मूल्यों के साथ-साथ वैज्ञानिकता और तर्कसंगतता ही साम्प्रदायिक भावनाओं को रोकने में महत्त्वपूर्ण साबित हो सकते है।

निष्कर्ष

साम्प्रदायिकता का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य उस विचारधारा से लगाया जाता है, जहाँ एक समुदाय या धर्म के लोग दूसरे समुदाय या धर्म के विरुद्ध शत्रुता का भाव पैदा करें और उन व्यक्तियों का सामाजिक , आर्थिक, राजनीतिक व मनोवैज्ञानिक रूप से शोषण करे। परन्तु इतिहास गवाह है कि अगर भारत में असामाजिक तत्वों ने सम्प्रदाय के नाम पर देश को कमजोर किया है तो कुछ व्यक्ति विशेष या वर्ग ने इससे देश को उभारा भी है व साम्प्रदायिक हिंसा से अल्पसंख्यक वर्ग को बचाकर देश की अखण्डता व सहिष्णुता बनाए रखी है। ऐतिहासिक रूप से प्रशासन में भी संहिताबद्ध दिशा निर्देश जारी किए जाये व पुलिस बल व अभियोजन एजेंसियों द्वारा भी आज नागरिक समाज को सभ्य बनाया गया है। कुछ परियोजनाओं द्वारा भी आने वाली पीढ़ियों को मजबूत बनाया जा सकता है व सद्भाव के मूल्यों पर समाज की नींव रखी जा सकती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीवास्तव, के.सी., प्राचीन भारत का इतिहास एवं संस्कृति यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2015
2. डिकंस, पीटर, सॉशल श्योरी एण्ड द एन्वायरमेन्ट, चेंजिग नेचर, चेंजिग अवरसेल्वस, क्रेम्ब्रीज, पॉलेटी प्रेस, 2004
3. गोल्फन इडवर्ड ए, जनरल ऑफ सेच्नुरी इन मॉर्डन हिस्ट्री हावर्ड पब्लिकेशन, 2002
4. ग्रोवर, यशपाल, मेहता अल्का, आधुनिक भारत का इतिहास, चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, नई दिल्ली, 2015
5. मार्टेज, ल्यूक, इंफोलाजी एण्ड सोसायटी: एन इन्ट्रोडक्शन न्यू पॉलिटी प्रेस, 1994
6. आर, रार्बट मुन्ट्ज, हिस्टोरिकल स्टेटिक्स ऑफ यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका, 2006
7. माथुर कुमार अनूप, इण्डियन हिस्ट्री, राजस्थान राज्य पुस्तक मण्डल ऑफसेट प्रेस, नोएडा, 2017
8. सेफ, अल्रीच, रिस्क सोसायटी, टू वर्ड्स ए न्यू मॉर्डनेटि, सेज पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, 2009